गोरा
अध्याय 6

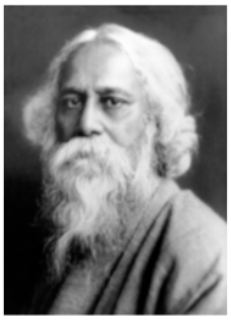

रविंद्रनाथ टैगोर

हिन्दी ADDA

गोरा

अध्याय 6

https://www.hindiadda.com/gora-part-vi/

गोरा ने दो-तीन घंटे की नींद के बाद जागकर देखा कि विनय पास ही सोया हुआ है, देखकर उसका हृदय आनंद से भर उठा। कोई प्रिय वस्तु सपने में खोकर, जागकर यह देखे कि वह वस्तु खोई नहीं है, तब मन को जैसा संतोष होता है वैसा ही गोरा को हुआ। गोरा का ज़ीवन विनय को छोड़ देने से कितना अधूरा हो जाता, विनय को पास ही देखकर आज उसने इस बात का अनुभव किया। इसी आनंद की लहर में गोरा ने विनय को उसका सिर हिलाकर जगा दिया और कहा, "चलो, एक काम है।"

गोरा का रोज सबेरे का एक नियमबध्द काम था। पड़ोस के निम्न श्रेणी के लोगों के घर वह जाता था। उसकी मदद करने या उन्हें उपदेश देने के लिए नहीं, सिर्फ उन्हें देखने ही जाता था। पढ़े-लिखे अन्य लोगों के साथ उनका ऐसा मेल-जोल कतई नहीं था। गोरा को वे लोग 'दादा ठाकुर' कहते थे और कौड़ियाँ-लगे हुक्के से उसका स्वागत करते थे। केवल इन लोगों का आतिथ्य स्वीकार करने के लिए ही गोरा ने जबर्दस्ती तम्बाकू पीना शुरू कर दिया था।

नंद इन लोगों में गोरा का खास भक्त था। बढ़ई का लड़का था नंद, उम्र लगभग बाईस। बाप की दुकान में वह लकड़ी के बक्स तैयार किया करता था। मैदान में शिकार खेलने वालों में नंद के बराबर बंदूक का निशाना साधने वाला कोई नहीं था। क्रिकेट के खेल में गेंद फेंकने में भी वह सबसे अव्वल था।

अपनी शिकार और क्रिकेट की टोलियों में गोरा ने भद्र घरों के विद्यार्थियों के साथ इन सब बढ़ई-लुहार लड़को को भी मिला लिया था। इस मिले-जुले गुट में नंद सब तरह के खेलों और कसरत में सबसे आगे था। भद्र विद्यार्थियों में कोई कोई उससे ईष्या भी करते थे, पर गोरा के शासन में सभी को उसे सरदार मानने को बाध्य होना पड़ता था।

कुदाल लगने से पैर कट जाने के कारण यही नंद पिछले कुछ दिन से खेल के मैदान में नहीं आ रहा था। उन दिनों गोरा विनय की बात को लेकर बेचैन था, इसलिए वह नंद के घर नहीं जा सका था। किंतु आज सबेरे ही वह विनय को साथ लेकर बढ़ई-टोले में जा पहुँचा।

नंद मर गया! ऐसी शक्ति, ऐसा तेज, ऐसा स्वास्थ्य, कर्मठ, इतनी कम उम्र-और ऐसा नंद आज सबेरे मर गया। गोरा अपने सारे शरीर को कड़ा करके किसी तरह सँभलकर खड़ा रह सका। नंद एक मामूली बढ़ई का लड़का था- उसके न रहने से संसार की रफ्तार में क्षण-भर की जो बाधा पड़ेगी उसे बहुत थोड़े ही लोग देख सकेंगे-

लेकिन आज गोरा को नंद की मृत्यु असहनीय रूप से असमय और असंभव जान पड़ रही थी। गोरा ने तो देखा था कि उसमें कितना आत्मबल है- इतने और लोग जीते हैं लेकिन उस-जैसा प्राणवान तो कोई नहीं दीखता।

कैसे मृत्यु हुई, यह पूछने पर मालूम हुआ कि उसे धनुष्टंकार हो गया था। नंद के बाप ने डॉक्टर को बुलाना चाहा था, किंतु नंद की माँ ने ज़ोर देकर कहा था कि उसके लड़के को भूत लग गया है। ओझा सारी रात मंत्र पढ़कर और मारकर उसे झाड़ते रहे। बेहोश होने से पहले नंद ने गोरा को खबर देने का अनुरोध किया था, लेकिन गोरा आकर कहीं डॉक्टरी इलाज के लिए जिद न करने लगे, इस भय से किसी को नंद की माँ ने गोरा तक खबर पहुँचाने जाने नहीं दिया।

विनय ने वहाँ से लौटते समय कहा, "कैसी अज्ञानता है! और उसकी कैसी भयानक सजा!"

गोरा ने कहा, "इस अज्ञान को एक तरफ करके और स्वयं को इससे बाहर मानकर अपने को तसल्ली मत दो, विनय! यह अज्ञानता कितनी बड़ी है, और उसकी सजा भी कितनी भीषण है, यह अगर तुम साफ-साफ देख सकते तो ऐसे आक्षेप का एक वाक्य कहकर पल्ला झाड़ सारे मामले से तटस्थ हो जाने की चेष्टा न करते!"

मन के आवेग के साथ क्रमश: गोरा के कदम भी तेज़ होते गए। विनय उसकी बात का कोई उत्तर न देकर उसके बराबर कदम रखता हुआ साथ चलने की कोशिश में लग गया।

गोरा कहता रहा, "सारी जाति ने अंधता के हाथों अपनी अक्ल बेच दी है। देवता, भूत-प्रेत, उल्लू, छींक, बृहस्पतिवार, बिल्ली-किस-किसका डर है,इसका कोई अंत नहीं हैं सत्य के साथ जगत में कैसे मर्दानगी से जूझना होता है, यह ये लोग कैसे जानेंगे? और हम-तुम जैसे समझ लेते हैं कि हम लोगों ने दो-चार पन्ने विज्ञान पढ़ लिया है इसलिए हम इनके गुट में नहीं है। लेकिन यह निश्चित जानों, चारों ओर फैली हुई हीनता की जकड़ से थोड़े-से लोग किताबी विद्या के सहारे कभी अपने को बचाकर नहीं रह सकते। ये लोग जब तक दुनिया के चलने के नियम के आधिपत्य में विश्वास नहीं करेंगे, जब तक लोग मिथ्याचार में जकड़े रहेंगे, तब तक हमारे शिक्षित लोग भी इसके प्रभाव से बच नहीं सकते।"

विनय ने कहा, "शिक्षित लोग यदि बच भी जाएँगे तो क्या! शिक्षित हैं ही कितने? पढ़े-लिखों को उन्नत करने के लिए ही दूसरों को उन्नत होना होगा, ऐसी बात नहीं हैं बल्कि दूसरों को उन्नत करने में ही पढ़े-लिखों की शिक्षा का सदुपयोग है।"

विनय का हाथ पकड़कर गोरा ने कहा, "ठीक यही बात तो मैं कहना चाहता हूँ। लेकिन तुम लोग अपनी भद्रता और शिक्षा के अभिमान में साधारण लोगों से अलग होकर मजे में निश्चिंत हो सकते हो, यह मैंने अक्सर देखा है; इसीलिए तुम्हें मैं सावधान कर देना चाहता हूँ कि नीचे के लोगों का निस्तार किए बिना यथार्थ में तुम्हारा निस्तार कभी नहीं होगा। नाव के तल में छेद हो तो नाव का मस्तूल कभी अकड़कर नहीं चल सकता, चाहे वह कितना ही ऊँचा क्यों न हो।"

निरुत्तर होकर विनय गोरा के साथ चलता रहा।

गोरा थोड़ी देर चुप रहकर फिर बोल उठा, "नहीं विनय, इसे मैं किसी तरह सहज भाव से बर्दाश्त नहीं कर कर सकता! जो ओझा आकर मेरे नंद को मार गया है, उसकी मार मुझ पर पड़ रही है, सारे देश पर पड़ रही है। इन सब बातों को मैं अलग-अलग, छोटी-छोटी घटनाओं के रूप में किसी तरह नहीं देख पाता।"

फिर भी विनय को निरुत्तर देखकर गोरा भड़क उठा, "विनय, मैं यह खूब समझता हूँ कि मन-ही-मन तुम क्या सोचते हो। तुम सोचते हो, यह जो सब अंधविश्वास और झूठ भारतवर्ष की छाती पर सवार है, इसका बोझ हिमालय के बोझ की तरह अडिग है, इसे कौन सरका सकता है, लेकिन मैं ऐसे नहीं सोचता, सोचता तो बचता नहीं। जो कुछ भी हमारे देश को चोट पहुँचाता है उसका प्रतिकार ज़रूर है, फिर वह चाहे कितनी ही प्रबल क्यों न हो। और प्रतिकार एकमात्र हमारे ही हाथ में है, ऐसा मेरा अटल विश्वास है; तभी मैं चारों ओर फैले इस दु:ख-अपमान-दुर्गति को सह सकता हूँ।"

विनय ने कहा, "देश-व्यापी इतनी बड़ी दुर्गति के सामने अपने विश्वास को दृढ़ रखने का मुझे तो साहस ही नहीं होता।"

गोरा ने कहा, "अंधेरा विस्तृत होता है और दीए की शिखा छोटी। पर इतने बड़े अंधकार के बजाय इतनी छोटी-सी शिखा पर ही मैं अधिक आस्था रखता हूँ। दुर्गति चिरस्थाई हो सकती है, किसी तरह भी यह बात मैं नहीं मान सकता। सारे विश्व की ज्ञान-शक्ति, प्राण-शक्ति उस पर भीतर और बाहर से बराबर चोट कर रही है। हम लोग छोटे ही क्यों न हों, उसी ज्ञान और प्राण के गुट में जा शामिल होगे। वहाँ

खड़े-खड़े यदि मर भी जाएँ तो मन में यह निश्चय जानकर मरें कि हमारे गुट की जीत होगी। देश की जड़ता को ही सबसे बड़ा और प्रबल मानकर उसी का रोना लेकर पड़े नहीं रहेंगे। मैं तो कहता हूँ, संसार में शैतान के ऊपर श्रध्दा रखना और भूत से डरना एक बराबर है; दोनों का फल यही होता है कि रोग की सही चिकित्सा की ओर प्रवृत्ति ही नहीं होती। जैसा झूठा डर वैसा ही झूठा ओझा; दोनों ही हमें मारते रहते हैं। विनय, तुमसे मैंने बार-बार कहा है, इस बात को एक क्षण-भर के लिए भी, कभी सपने में भी, असम्भव मत समझो कि हमारा यह देश मुक्त होगा ही नहीं; अज्ञान उसे हमेश जकड़े नहीं रहेगा तथा यह अंग्रेज भी उसे अपनी व्यापार की नौका के पीछे-पीछे साँकल से बाँधे हुए नहीं ले जा सकेगा। मन में यही बात दृढ़ रखकर हमेशा तैयार रहना होगा। भारतवर्ष की स्वाधीनता के लिए भविष्य में किसी एक दिन की लड़ाई शुरू होगी, तुम लोग इसी पर अपनी किस्मत छोड़कर निश्चिंत बैठे हो। किंतु मैं कहता हूँ, लड़ाई आरंभ हो गई है- हर क्षण हो रही है; ऐसे समय में भी अगर तुम निश्चिंत रह सकते हो तो इससे बड़ी का पुरुषता और नहीं हो सकती।"

विनय ने कहा, "देखो गोरा, तुममें और अपने में एक अंतर मुझे यह दीखता है, कि हमारे देश में प्रतिदिन राह चलते जो कुछ होता रहता है,और बहुत दिन से जो होता चला आ रहा है, तुम उसे मानो रोज नई दृष्टि से देख पाते हो। जैसे हम साँस लेने को भूल रहते हैं, हमारे लिए यह सब भी वैसा ही है- न हमें आशा देता है, न हताश करता है- उसमें हमें न आनंद है, न दु:ख है- दिन पर दिन शून्य भाव से बीतते जाते हैं और इस सबके मध्य हम अपना या अपने देश का अनुभव ही नहीं करते।"

गोरा का मुँह सहसा लाल हो गया और माथे की नसें तन गईं.... दोनों हाथों की मुट्ठियाँ भींचकर वह रास्ते के बीच जाती हुई दो घोड़ों वाली गाड़ी के पीछे दौड़ा और राह चलते लोगों को अपनी गरज से चौंकाता हुआ चिल्लाया, "गाड़ी रोको!" भारी घड़ी-चेन पहने हुए एक बाबू गाड़ी हाँक रहे थे,उन्होंने एक बार पीछे मुड़कर देखा और दोनों घोड़ों को चाबुक मारकर क्षण-भर में भागकर दूर निकल गई।

एक बूढ़ा मुसलमान सिर पर फल-सब्जी, अण्डा, रोटी, मक्खन आदि खाने-पीने की चीज़ें को लेकर किसी अंग्रेज प्रभु की रसोई की ओर चला जा रहा था। चेन पहने हुए बाबू ने उसे गाड़ी के आगे से हट जाने की हाँक भी लगाई थी, पर बूढ़े के न सुन पाने से गाड़ी उसके ऊपर से निकल गई थी। बूढ़े के प्राण तो बच गए, लेकिन टोकरी की सब चीजें लुढ़ककर सड़क पर बिखर गईं। क्रुध्द बाबू ने कोच-बक्स से 'डैम सूअर!' की गाली देकर चाबुक उठाया और तड़क से बूढ़े के सिर पर जमा दिया। उसके माथे पर

लहू की लाल रेखा खिंच गई। बूढ़े ने 'अल्लाह!' कहकर लंबी साँस ली और चीजें बच गई थी उन्हें उठा-उठाकर टोकरी में रखने लगा। गोरा भी मुड़कर बिखरी हुई चीजें बीन-बीनकर उसकी टोकरी में रखने लगा। बूढ़ा मुसलमान एक अच्छे-भले भद्र पथिक का ऐसा व्यवहार देखकर सकुचाते हुए बोला, "आप क्यों कष्ट करते हैं बाबू- अब ये किसी काम नहीं आएँगी।"

यह गोरा भी जानता था कि जो वह कर रहा है अनावश्यक है, और यह भी जानता था कि जिसकी सहायता की जा रही है उसे संकोच हो रहा है। वास्तव में सहायता के उस कार्य का कोई विशेष मूल्य नहीं था। लेकिन एक भद्रजन ने जिसका अपमान किया है, उसी अपमानित के साथ एक दूसरा भद्रजन अपने को मिलाकर धर्म की क्षुब्ध व्यवस्था में सामंजस्य लाने का प्रयत्न कर रहा है, यह बात राहगीर लोगों के लिए समझनी असंभव थी। टोकरी भर जाने पर गोरा ने बूढ़े से कहा, "तुमसे तो इतना नुकसान सहा नहीं जाएगा। चलो, हमारे घर चलो, पूरे दाम चुकाकर हम सब ले लेंगे। लेकिन बाबा, एक बात तुमसे कहूँ- तुमने जो यह अपमान बिना कुछ कहे सह लिया, उसके लिए अल्लाह तुम्हें माफ नहीं करेंगे।"

मुसलमान ने कहा, "कुसूर जिसका है, अल्लाह उसको सज़ा देंगे मुझे क्यों देंगे?"

गोरा ने कहा, "जो अन्याय सहता है, वह भी दोषी है। क्योंकि दुनिया में अन्याय को बढ़ावा देता है। तुम मेरी बात समझोगे नहीं, पर याद रखो,दुष्ट के साथ भलमनसाहत धर्म नहीं है; उससे दुष्ट लोगों का हौसला बढ़ता है। तुम्हारे मुहम्मद साहब इस बात को समझते थे, तभी भलेमानस के ढंग से उन्होंने धर्म-प्रचार नहीं किया।"

गोरा का घर वहाँ से नजदीक नहीं था, इसलिए उस मुसलमान को गोरा विनय के घर ले गया। विनय की मेज के दराज के सामने खड़े होकर वह विनय से बोला, "पैसा निकालो!"

विनय ने कहा, "उतावले क्यों होते हो, तुम बैठो तो, मैं दे रहा हूँ!"

लेकिन एकाएक चाबी नहीं मिल सकी। अधीर होकर गोरा ने दराज को झटका दिया तो वह खुल गया।

दराज के खुलते ही परेशबाबू के घर के लोगों का एक बड़ा फोटो सबसे पहले दिखाई पड़ा। उसे विनय ने अपने मित्र सतीश से प्राप्त किया था।

गोरा ने उस मुसलमान को पैसे देकर विदा कर दिया। किंतु फोटोग्राफ के बारे में कोई बात नहीं की। इस विषय में गोरा के चुप लगा जाने से विनय भी कुछ बात नहीं कह सका, हालाँकि दो-चार बातें हो जाने से विनय का मन स्वस्थ हो जाता।

गोरा ने सहसा कहा, "मैं चलता हूँ।"

विनय ने कहा, "वाह, अकेले कैसे चल दिए? मुझे माँ ने तो तुम्हारे यहाँ खाने को बुलाया है। चलो, मैं भी चलता हूँ।"

दोनों सड़क पर आ गए। किंतु गोरा ने रास्ते-भर और कोई बात नहीं की। मेज के दराज में वह फोटो देखकर फिर एक बार गोरा को याद हो आया था कि विनय के चित्त की एक मुख्य धारा एक ऐस दिशा में बह रही है जिससे गोरा के जीवन का कोई संपर्क नहीं है। आगे चलकर ऐसा हो सकता है कि बंधुत्व की स्नेह-गंगा सूख जाय और नदी का सारा प्रवाह इस दूसरी ओर बहने लगे, यह छुपी आशंका गोरा के हृदय की गहराई में कहीं एक बोझ-सी बन गई। हर काम और सोच-विचार में अब तक दोनों बंधुओं के बीच कोई रुकावट नहीं थी, लेकिन अब यह स्थिति बनाए रखना कठिन हो गया है- एक बिंदु पर विनय स्वतंत्र हो गया है।

विनय यह समझ गय कि गोरा क्यों चुप लगा गया है। लेकिन नीरवता के इस बाँध को ज़बरदस्ती तोड़ने में उसे संकोच हुआ। जिस जगह गोरा का मन आकार उलझ जाता हैं वहाँ सचमुच एक रुकावट है, यह विनय ने स्वयं भी अनुभव किया।

उन्होंने घर पहुँचते ही देखा कि महिम रास्ते की ओर देखते हुए दरवाज़े पर खड़े हैं। उन्होंने दोनों बन्धुओं को देखकर कहा, "मामला क्या है कल की रात तो तुम दोनों ने सोए बिना ही काट दी- मैं तो समझ रहा था, शायद दोनों आराम से कहीं फुटपाथ पर पड़े सो रहे होगे। कितनी देर हो गइ है! जाओ विनय, जाकर नहाओ!"

विनय को नहाने के लिए भेजकर महिम गोरा की ओर मुड़े। बोले, "देखो गोरा, तुमसे जो बात कही थी उस पर ज़रा सोचकर देखो। विनय भी अगर तुम्हें अनाचारी जान पड़ता है, तो फिर आजकल के समान में हिंदू पात्र मिलेगा कहाँ? और कोरा हिंदूपन होने से भी तो नहीं चलेगा, लिखाई-पढ़ाई भी तो चाहिए। लिखाई-पढ़ाई और हिंदूपन मिलने से जो चीज़ बनती है, वह हमारे हिंदू मत से ठीक शास्त्रीय चीज़ तो नहीं होती- लेकिन ऐसी बुरी चीज़ भी नहीं होती। अगर तुम्हारे लड़की होती तब इस मामले में तुम्हारी राय मेरी राय से बिल्कुल मिल जाती!"

गोरा ने कहा, "तो अच्छा ही है- मेरे खयाल में विनय को कोई आपत्ति न होगी।"

महिम ने कहा, "सुनो गोरा! विनय की आपत्ति की बात कौन सोच रहा है! तुम्हारी आपत्ति से तो पहले निबट लें। एक बार तुम अपने मुँह से विनय से अनुरोध करो, और मुझे कुछ नहीं चाहिए। भले ही उससे फल न हो, तो न हो।"

गोरा बोला, "अच्छा"

मन-ही-मन महिम ने कहा- अब तो मेहरा की दुकान से संदेश और गयला की दुकान से दही-रबड़ी की फरमाइश की जा सकेगी!"

गोरा ने मौका पाकर विनय से कहा, "शशिमुखी के साथ तुम्हारे विवाह के लिए ददा दबाव डाल रहे हैं। तुम्हारी राय है?"

विनय ने पूछा, "तुम्हारी क्या राय है, पहले यह बताओ!"

गोरा, "मैं तो कहता हूँ, बुरा क्या है।"

विनय, "पहले तो तुम बुरा ही कहते थे। हम दोनों में से कोई ब्याह नहीं करेगा, यह तो एक तरह से तय हो चुका था।"

गोरा बोला, "अब यह तय समझो कि तुम ब्याह करोगे और मैं नहीं करूँगा।"

विनय ने कहा, "क्यों, एक ही यात्रा के अलग-अलग पड़ाव क्यों?"

गोरा, "'अलग पड़ाव होने के भय से ही तो यह व्यवस्था की जा रही है। किसी को विधाता यों ही ज्यादा बोझ से लाद देते हैं, और किसी को बिल्कुल सहज भार-मुक्त। ऐसे असम प्राणियों को एक साथ जोतकर चलाना हो तो इनमें से एक बाहर से बोझ लादकर दोनों का बोझ बराबर करना पड़ता है। तुम विवाह करके कुछ जिम्मेदारी से लद जाओगे तो फिर हम तुम एक-सी चाल से चल सकेंगे!"

कुछ हँसकर विनय ने कहा, "अगर यहीं मंशा है तो ठीक है, बाट उसी पलड़े में डाल दो!"

गोरा ने पूछा, "बाट के बारे में तो कोई आपत्ति नहीं है?"

विनय, "भार बराबर करने के लिए तो हाथ पड़ जाय उसी से काम चल सकता है- वह पत्थर हो तो भी चल सकता है, ढेला हो तो भी!"

इस विवाह के प्रस्ताव में गोरा ने क्यों उत्साह दिखाया है, यह समझने में विनय को देर न लगी। गोरा को आशंका हुई थी कि विनय कहीं परेशबाबू के परिवार मे विवाह न कर ले, यह समझकर मन-ही-मन विनय हँसा। ऐसे विवाह का संकल्प तो क्या, संभावना भी क्षण-भर के लिए उसके मन में उदित नहीं हुई। वह तो हो ही नहीं सकता! जो भी हो, शशिमुखी से विवाह हो जाने पर ऐसी आशंका जड़-मूल से उखड़ जाएगी, और वैसा होने पर दोनों का बंधु-भाव फिर स्वस्थ और निर्बाध हो जाएगा; और परेशबाबू के परिवार से मिलने-जुलने में भी किसी ओर से उसे संकोच करने का कोई कारण न करेगा, यही सोचकर शशिमुखी से विवाह के लिए उसने सहज ही सम्मति दे दी।

दोपहर के भोजन के बाद रात की नींद की कमी पूरी करते-करते दिन बीत गया। दोनों बंधुओं में दिन-भर और कोई बात नहीं हुई। पर साँझ को, जब सारे जगत पर अंधकार का पर्दा पड़ जाता है तब मानो बंधुओं के मन का पर्दा उठ जाता है, ऐसे झुटपुटे के समय छत पर बैठे-बैठे विनय ने सीधे आकाश की ओर ताकते हुए कहा, "देखो गोरा, मैं तुम्हें एक बात कहना चाहता हूँ। मुझे लगता है, हमारे स्वदेश-प्रेम में एक बहुत बड़ा अधूरापन है। हम लोग भारतवर्ष को आधा ही करके देखते हैं।"

गोरा ने पूछा "वह कैसे?"

विनय, "भारतवर्ष को हम केवल पुरुषों का देश मानकर देखते हैं, स्त्रियों को बिल्कुल देखते ही नहीं।"

गोरा, "तो तुम अंग्रेजों की तरह शायद घर में और बाहर, जल-थल और आकाश में, आहार-विहार और कर्म में, सब जगह स्त्रियों को देखना चाहते हो? उसका नतीजा यही होगा कि स्त्रियों को पुरुषों से अधिक मानना होगा- उससे भी दृष्टि में सामंजस्य नहीं रहेगा।"

विनय, "नहीं-नहीं, मेरी बात को ऐसे उड़ा देने से तो नहीं चलेगा। अंग्रेजों की तरह देखने या न देखने का सवाल कहाँ उठता है? मैं तो यह कहता हूँ कि इतना तो सत्य है कि स्वदेश में स्त्रियों के अंश को हम लोगों ने अपने चिंतन में उचित स्थान नहीं दिया है। तुम्हारी ही बात लो। स्त्रियों के बारे में तुम कभी क्षण-भर भी नहीं सोचते-

तुम्हारी राय में देश मानो नारीहीन ही है। ऐसा समझना कभी सत्य समझना नहीं हो सकता।"

गोरा, "मैंने अपनी माँ को जब देखा है, जाना है, तब अपने देश की सभी स्त्रियों को एक उसी रूप में देख और जान लिया है।"

विनय, "यह तो अपने को भुलावा देने के लिए तुम आलंकारिक बात कह रहे हो। घर के काम-काज के बीच हम घर की स्त्रियों को अति-परिचित भाव से देखते हैं, उससे ही वास्तविक देखना नहीं होता। गृहस्थी के काम-काज से बाहर यदि हमारे देश की स्त्रियों को हम देख पाते तो स्वदेश के सौंदर्य और संपूर्णता को देखते। देश की एक ऐसी छवि दिखाई देती जिसके लिए प्राणोत्सर्ग आसान होता- कम-से-कम यह मानने की भूल हमसे कभी न होती कि देश में स्त्रियाँ मानो कहीं हैं ही नहीं। मैं जानता हूँ कि अंग्रेजों के समाज से अपनी तुलना करने लगते ही तुम आग-बबूला हो उठोगे- वह मैं करना भी नहीं चाहता। यह भी मैं नहीं जानता कि ठीक किस हद तक या किस ढंग से हमारे समाज में स्त्रियों के आगे आने से उनकी मर्यादा का उल्लंघन नहीं होगा। लेकिन यह हमें मानना होगा कि स्त्रियों के छिपे रहने से हमारा स्वदेश हमारे लिए आधा ही सच है- यह हमारे हृदय को पूरा या पूरी शक्ति नहीं दे सकता।"

गोरा, "लेकिन तुम्हें हठात् यह बात इस समय कैसे सूझ गई?"

विनय, 'हाँ, अभी ही सूझी है और हठात् सूझी है। इतना बड़ा सत्य मैं इतने दिन से नहीं जानता था। अब जान सका हूँ, अपने को इसके लिए भाग्यवान् समझता हूँ। जैसे हम लोग किसान को केवल उसकी खेती के, या जुलाहे को केवल उसकी बुनाई के बीच देखते हैं, इसीलिए उन्हें छोटी जाति मानकर उनकी अवज्ञा करते हैं, वे हमें पूरी दीखती ही नहीं, और इस छोटे-बड़े के भेद के कारण ही देश कमज़ोर हुआ है। ठीक उसी तरह देश की स्त्रियों को भी केवल चौका-बासन और कुटाई-पिसाई से घिरी हुई देखकर हम स्त्रियों को केवल 'मादा' मानकर उन्हें ओछी नज़र से देखते हैं.... इससे हमारा सारा देश अधूरा हो जाता है।"

गोरा, "जैसे दिन और रात, पूर्ण दिवस के दो भाग हैं, वैसे ही पुरुष और स्त्री समाज के दो अंश हैं। समाज की स्वाभाविक अवस्था में स्त्री रात की तरह ओझल ही रहती है- उसका सारा कार्य गूढ़ और निभृत है। अपने कार्य के हिसाब में हम रात को नहीं गिनते। लेकिन न गिनने से ही उसका जो गंभीर कार्य है उसमें से कुछ भी घट नहीं जाता। वह गोपन-विश्राम के बहाने क्षति-पूर्ति करती है, हमारे पोषण में सहायक

होती है। जहाँ समाज की व्यवस्था अस्वाभाविक है वहाँ ज़बरदस्ती रात को दिन बनाया जाता है- गैस जलाकर मशीनें चलाई जाती हैं, बत्तियाँ जलाकर रात-भर नाच-गाना जमता है। उसका परिणाम क्या होता है? यही कि रात का जो स्वाभाविक अलक्षित काम है वह नष्ट हो जता है, अनिद्रा से थकान बढ़ती जाती है,क्षति-पूर्ति नहीं हो पाती, इंसान उन्मादी हो उठता है। ऐसे ही स्त्रियों को भी यदि हम खुले कर्म-क्षेत्र में खींचकर ले आएँ तो उससे उनके निगूढ़ कर्म की अवस्था नष्ट हो जाती है-उससे समाज का स्वास्थ्य और शांति नष्ट होती है, समाज पर एक पागलपन सवार हो जाता है। उस पागलपन से कभी शक्ति का भ्रम हो सकता है, किंतु यह शक्ति विनाश करने की शक्ति है। शक्ति के दो अंश होते हैं- एक व्यक्त और एक अव्यक्त; एक उद्योग और एक विश्राम; एक प्रयोग और एक संवरण। शक्ति का यह सामंजस्य नष्ट करने से वह क्षुब्ध हो उठती है, लेकिन वह क्षोभ मंगलदायक नहीं है। नर-नारी समाज-शक्ति के दो पक्ष हैं; पुरुष व्यक्त हैं, लेकिन व्यक्त होने से ही वह बड़ा है ऐसा उचित नहीं है। नारी अव्यक्त है; इस अव्यक्त शक्ति को अगर केवल व्यक्त करने की कोशिश की जाएगी तो समाज का सारा मूल-धन खर्च करके तेज़ी से उसे दिवालियापन की ओर ले जाना ही होगा। इसीलिए कहता हूँ,कि पुरुष लोग अगर यज्ञ के क्षेत्र में रहे और स्त्रियाँ भंडारे के पीछे, तभी स्त्रियों के अदृश्य रहने पर भी यज्ञ ठीक से संपन्न होगा। सारी शक्ति को जो लोग एक ही जगह, एक ही दिशा में, एक ही ढंग से खर्च करना चाहते हैं, वे पागल हैं।"

विनय, "गोरा, जो तुमने कहा है मैं उसका प्रतिवाद नहीं करना चाहता। किंतु जो कुछ मैंने कहा था, तुमने भी उसका प्रतिवादन नहीं किया। असल बात.... "

गोरा, "देखो विनय, इससे आगे इस मुद्दे को लेकर और अधिक बहस करना कोरी दलीलबाजी होगी। मैं यह मानता हूँ कि तुम आजकल स्त्रियों के मामले में जितने सजग हो उठे हो मैं अभी उतना नहीं हुआ। इसीलिए जो अनुभव तुम करते हो मुझे भी वही अनुभव कराने की चेष्टा कभी सफल नहीं हो सकती। इसलिए फिलहाल यही क्यों न मान लिया जाय कि इस मामले में हम दोनों की राय नहीं मिल सकती!"

इस तरह गोरा ने बात उड़ा दी। लेकिन बीज को उड़ा देने से भी अंत में वह भूमि पर गिरता ही है और गिरकर सुयोग होने पर उसमें अंकुर भी फूटता ही है। अब तक जीवन के क्षेत्र में गोरा ने स्त्री-जाति को अलग कर रखा था; उसने इसे कभी सपने में भी अभाव या क्षति के रूप में अनुभव नहीं किया था। आज विनय की बदली हुई अवस्था देखकर संसार में स्त्री-जाति की विशेष सत्ता और प्रभाव उसके सामने प्रकट

हो उठा। लेकिन इसका स्थान कहाँ है, इसका प्रयोजन क्या है, यह वह किसी तरह स्थिर नहीं कर सका, इसलिए विनय के साथ इस बारे में और बहस करना उसे अच्छा नहीं लगा। इस विषय को न वह अस्वीकार कर पा रहा थ, न उस पर अधिकार कर पा रहा था, इसीलिए वह उसे वार्तालाप से अलग ही रखना चाहता था।

विनय जब रात को घर लौट रहा था तब आनंदमई ने उसे बुलाकर पूछा, "विनय, सुनती हूँ कि तुम्हारा विवाह शशिमुखी के साथ ठीक हो गया है- यह सच है?"

लजाई हुई हँसी के साथ विनय ने कहा, "हाँ माँ, गोरा ही इस शुभ कर्म का कर्त्ता है।"

आनंदमई बोलीं, "शशिमुखी अच्छी लड़की है। लेकिन बेटा, तुम बचपना मत करो! तुम्हारा मन मैं समझती हूँ, विनय- तुम कुछ दुचित्ते हो रहे हो इसीलिए जल्दी-जल्दी में यह किए डाल रहे हो। अब भी सोचकर देखने का समय है अब तुम सयाने हो गए हो- इतना बड़ा काम बिना विचारे मत करो!"

यह कहते हुए आनंदमई ने विनय का कंधा सहला दिया। विनय कुछ कहे बिना वहाँ से धीरे-धीरे चला गया।

आनंदमई की बात के बारे में सोचता-विचारता विनय घर पहुँचा। आनंदमई की कही हुई कोई भी बात कभी उसके लिए उपेक्षणीय नहीं हुई; यह बात भी रात-भर उसके मन को बेचैनी करती रही।

दूसरे दिन सबरे उठकर मानो उसे मुक्ति का-सा अनुभव हुआ। उसे लगा कि गोरा की मित्रता का बहुत बड़ा दाम उसने चुका दिया है। एक ओर शशिमुखी से विवाह करने को राजी होकर उसने जो जीवन-भर का बंधन स्वीकार किया है, उसके बदले एक दूसरी ओर अपने बंधन काट देने का अधिकार भी उसे मिल गया है। उस पर गोरा को जो अत्यंत अन्यायपूर्ण संदेह हुआ था कि वह अपना समाज छोड़कर ब्रह्म-परिवार में विवाह करने के लिए ललचा रहा है, शशिमुखी से विवाह की सम्मति देकर इस संदेह से विनय ने अपने को मुक्त कर लिया है। तब से परेशबाबू के घर विनय ने नि:संकोच भा से और अक्सर आना-जाना प्रारंभ कर दिया।

उसे जो अच्छे लगें, उनके साथ घर के आदमी जैसा घुल-मिल जाना विनय के लिए कठिन नहीं है। जो संकोच गोरा के कारण था उसे मन से निकाल देने पर वह देखते-देखते परेशबाबू के घर के सभी लोगों से ऐसा घुल-मिल गया मानो बरसों से परिचय हो।

केवल जितने दिन ललिता के मन में यह संदेह रहा कि सुचरिता का मन शायद विनय की ओर कुछ आकृष्ट है, उतने दिन उसका मन विनय के विरुध्द मानो अस्त्र धारण किए रहा। किंतु उसने जब स्पष्ट समझ लिया कि सुचरिता का विनय की ओर ऐसा झुकाव नहीं है तब स्वत: उसके मन का विद्रोह दूर हो गया, और उसे बड़ी शांति मिली। फिर विनय बाबू को बहुत ही भला आदमी मानने में उसे कोई हिचक न रही।

हरानबाबू भी विनय से विमुख नहीं हुए- बल्कि कुछ अधिक जोर देकर यह स्वीकार किया कि विनय को भद्र आचरण का ज्ञान है। इस स्वीकारोक्ति का अभिप्राय मात्र यही था कि गोरा में इतनी तमीज नहीं है।

हरानबाबू के सामने विनय कभी कोई बहस की बात नहीं छेड़ता था, और सुचरिता की भी कोशिश रहती कि ऐसी कोई बात न उठे। इसीलिए इतने दिनों चाय की मेज पर शांति भंग नहीं हुई।

लेकिन हरान की अनुपस्थिति में जान-बूझकर सुचरिता विनय को अपने सामाजिक विचारों की चर्चा के लिए उकसाती। गोरा और विनय जैसे पढ़े-लिखे लोग देश के कुसंस्कारों का कैसे समर्थन कर सकते हैं, यह जानने का उसका उतावलापन किसी तरह शांत नहीं होता था। गोरा और विनय को वह स्वयं न जानती होती, तो यह सोचकर ही कि इन सब बातों को वे मानते हैं, और कुछ जाने-सुने बिना सुचरिता उन्हें अवहेलना के योग्य ठहरा देती। किंतु गोरा को देखने के बाद किसी तरह भी वह उसे अवहेलना के साथ मन से दूर नहीं कर सकी। तभी मौका मिलते ही घुमा-फिराकर वह विनय के साथ गोरा के विचारों और जीवन की चर्चा उठाती, और प्रतिवाद के द्वारा कोंचकर सब कुछ निकालने की कोशिश करती। परेशबाबू की राय में सभी संप्रदायों के विचार सुनने देना ही उसकी शिक्षा का तरीका था, इसलिए इस सब वाद-विवाद में उन्होंने कभी कोई पक्ष नहीं लिया, न कभी बाधा दी।

एक दिन सुचरिता ने पूछा, "अच्छा गौरमोहन बाबू क्या सचमुच जाति-भेद नहीं मानते, या वह केवल देश-प्रेम का अतिरिक्त जोश है?"

विनय ने कहा, "आप क्या सीढ़ी के अलग-अलग चरणों को मानती हैं? वे भी तो सब विभाग हैं- कोई ऊपर है, कोई नीचे।"

सुचरिता, "वह मानती हूँ तो इसीलिए, कि नीचे से ऊपर उठना होता है- नहीं तो ऐसा मानने की कोई ज़रूरत नहीं थी। समतल भूमि पर सीढ़ी को न मानने से भी काम चल जाएगा।"

विनय, "आप ठीक कहती हैं। हमारा समाज भी एक सीढ़ी है। उसका एक उद्देश्य था- वह था नीचे से ऊपर उठने देना- मानव-जीवन को एक शिखर तक ले जाना। अगर हम इस समाज को, इस संसार को ही मंजिल समझते तब तो किसी विभाग-व्यवस्था की कोई ज़रूरत ही नहीं थी; तब तो यूरोपीय समाज की तरह हम भी प्रत्येक दूसरे से अधिक कुछ झपट लेने के लिए छीना-झपटी और मारपीट करते होते! जो सफल होता संसार में वही सिर उठता और जिसकी कोशिश निष्फल हो जाती वह बिल्कुल नीचे दब जाता। हम लोग संसार में रहते हुए संसार के पार हो जाना चाहते हैं,इसीलिए हमने संसार के कर्तव्यों को प्रवृत्ति और प्रतियोगिता के आधार पर स्थिर नहीं किया.... सांसारिक कर्म को भी माना, क्योंकि कर्म के द्वारा कोई दूसरी उपलब्धि नहीं, मुक्ति ही पानी होगी। इसीलिए एक ओर संसार का काम, दूसरी अरे संसार के काम की परिणति, दोनों को मानकर ही हमारे समाज में वर्ण-भेद की अर्थात् वृत्ति-भेद की स्थापना हुई।"

सुचरिता, "आपकी बात मैं बहुत अच्छी तरह समझ पा रही हूँ, ऐसा नहीं है। किंतु मेरा प्रश्न यह है कि जिस उद्देश्य से आप समाज में वर्ण-भेद का चलन शुरू हुआ मानते हैं, उस उद्देश्य को क्या सफल होता देख रहे हैं?"

विनय, "दुनिया में सफलता को ठीक-ठीक पहचानना बड़ा कठिन है। ग्रीस की सफलता आज ग्रीस में नहीं है, पर इसीलिए यह नहीं कहा जा सकता कि ग्रीस का सारा विचार ही भ्रांत या व्यर्थ रहा। ग्रीस का विचार अब भी मानव-समाज में कई प्रकार की सफलता प्राप्त कर रहा है। भारतवर्ष ने जाति-भेद नाम से सामाजिक समस्या का एक बहुत सटीक उत्तर दिया था- वह उत्तर अभी भी लुप्त नहीं है- अब भी दुनिया के सामने मौजूद है। यूरोप भी सामाजिक समस्या का कोई और अच्छा हल अभी तक नहीं दे सका; वहाँ केवल ठेला-ठेली और छीना-झपटी ही चल रही है। भारतवर्ष का यह उत्तर मानव-समाज में अब भी सफलता की प्रतीक्षा कर रहा है- एक तुच्छ संप्रदाय की ओछी अंधता के कारण हमारे उसे उड़ा देना चाहने से ही वह उड़ जाएगा, ऐसा कभी न मानिएगा। हमारे छोटे-छोटे संप्रदाय पनी की बूँद जैसे समुद्र में मिल जाएँगे, लेकिन भारतवर्ष की सहज प्रतिभा से प्रकांड मीमांसा उद्भूत हुई है, वह तब तक स्थिर खड़ी रहेगी, जब तक कि पृथ्वी पर उसका कार्य पूर्ण न हो जाए।"

सकुचाते हुए सुचरिता ने पूछा, "बुरा न मानिएगा, लेकिन सच बताइए, ये सब बातें कहीं गौरमोहन बाबू की प्रतिध्वनि मात्र तो नहीं है, या कि सचमुच आप इन पर पूरा विश्वास करते हैं?"

हँसकर विनय ने कहा, "आपसे सत्य ही कहता हूँ, मेरे विश्वास में गोरा जैसा बल नहीं है। जब जाति-भेद के आडंबर और समाज के विकारों को देखता हूँ तब कई बार मैं संदेह भी प्रकट करता हूँ, किंतु गोरा का कहना है कि बड़ी चीज को छोटा करके देखने के कारण ही संदेह उत्पन्न होता है.... पेड़ की बड़ी चीज को छोटा करके देखने के कारण ही संदेह उत्पन्न होता है.... पेड़ की टूटी हुई डाल या सूखे पत्ते को ही पेड़ की चरम प्रकृति मानना विवेक की असहिष्णुता है- टूटी डाल की तारीफ करने को नहीं कहता, लेकिन वनस्पति के महत्व को भी देखो और उसका कार्य समझने की कोशिश करो।"

सुचरिता, "पेड़ के सूखे पत्ते यदि न भी देखे सही किंतु पेड़ का फल तो देखना होगा? हमारे देश के लिए जाति-भेद का फल कैसा है?"

विनय, "आप जिसे जाति-भेद का फल कहती हैं, वह अवस्था का फल है, केवल जाति-भेद का नहीं। हिलती हुई दाढ़ से चबाने पर दर्द होता है,वह दाँत का दोष नहीं है, हिलती दाढ़ का दोष है। विभिन्न कारणों से हम लोगों में विकार और दुर्बलता आ गई है, इसलिए हम भारतवर्ष के विचार को सफल न करके उसे और विकृत किए दे रहे हैं.... वह विकार विचार का मूलगत नहीं है। हममें आत्मबल और स्वास्थ्य भरपूर हो तो सब अपने-आप ठीक हो जाएगा। इसीलिए गोरा बार-बार कहते हैं कि सिर दुखता है इसलिए सिर उड़ा देने से नहीं चलेगा.... स्वस्थ बनो, सबल बनो!"

सुचरिता, "अच्छा तो आप ब्राह्मण-जाति को नर-देवता मानने को कहते हैं? क्या आप मानते हैं कि ब्राह्मण के पैरों की धूल से मनुष्य सचमुच पवित्र हो जाता है?"

विनय, "पृथ्वी पर बहुत-से सम्मान तो हमारे अपने बनाए हुए हैं। जब तक राजा की ज़रूरत रहती है- चाहे जिस कारण से भी हो- तब तक तनुष्य उसे असाधारण ही कहकर चर्चा करते हैं। लेकिन वास्तव में तो राजा असाधारण नहीं है। फिर भी अपनी साधारणता की हद लाँघकर उसे असाधारण हो उठता होगा, नहीं तो वह राज ही नहीं कर सकेगा। राजा से सुचारू ढंग से व्यवस्था पाने के लिए हम उसे असाधारण बना देते हैं- हमारे उस सम्मान की जिम्मेदारी राजा को सँभालनी पड़ती है, यानी उसे असाधारण बनना पड़ता है। मनुष्य के सभी संबंधों में ऐसी ही कृत्रिमता है। यहाँ तक

कि माता-पिता का जो आदर्श हम सबने मिलकर खड़ा किया है, उसी के कारण माता-पिता को समाज में विशेष रूप से आदरणीय माना जाता है, केवल स्वाभाविक स्नेह के कारण नहीं। संयुक्त परिवार में बड़ा भाई छोटे भाई के लिए बहुत-कुछ सहता है और त्याग करता है- क्यों करता है?बड़े भाई को हमारे समाज में बड़े भाई का विशेष पद इसीलिए दिया गया है, दूसरे समाजों में वैसा नहीं है। अगर ब्राह्मण को भी सचमुच ब्राह्मण बनाया जा सके तो वह क्या समाज के लिए मामूली उपलब्धि होगी? हम लोग नर-देवता चाहते हैं। यदि सच्चे मन से और विवेकपूर्वक हम नर-देवता को चाहें तो अवश्य पाएँगे-और अगर मूर्खों की तरह चाहें तो जो सब अपदेवता तरह-तरह के ढोंग करते रहते हैं, और हमारे माथे पर अपने चरणों की धूल डालना जिनकी जीविका का साधन है, उनका गुट और धरती का बोझ-बढ़ेगा ही!"

सुचरिता, "आपके ये नर-देवता कहीं हैं भी?"

विनय, "जैसे बीज में पौधा छुपा होता है वैसे ही हैं, भावतवर्ष के आंतरिक अभिप्राय और प्रयोजन में हैं। अन्य देश वेलिंगटन-जैसा सेनापति,न्यूटन-जैसा वैज्ञानिक, राथ्सचाइल्ड-जैसा लखपति चाहते हैं, हमारा देश ब्राह्मण चाहता है। ब्राह्मण-जिसे डर नहीं है, जो लालच से घृणा करता है, जो दु:ख पर विजय पाता है, जो अभाव की परवाह नहीं करता, जो 'परमे ब्रह्मणि योजितचित्त:' है, जो अटल हैं, शांत है, मूर्त है- उस ब्राह्मण को भारतवर्ष चाहता है- सचमुच उसे पा लेने से भारतवर्ष स्वाधीन हो सकेगा। हमारे समाज के प्रत्येक अंश में, प्रत्येक र्म में, नवरत मुक्ति का स्वर गुँजाने के लिए ही ब्राह्मण चाहिए- खाने और घंटी बजाने के लिए नहीं! समाज की सार्थकता को हर समय समाज की ऑंखों के सामने प्रत्यक्ष किए रहने के लिए ही ब्राह्मण चाहिए। ब्राह्मण के इस आदर्श को हम जितना बड़ा अनुभव करेंगे, ब्राह्मण के सम्मान को भी उतना ही बड़ा करे रखना होगा। वह सम्मान राजा के सम्मान से भी कहीं अधिक है; वह सम्मान देवता का ही सम्मान है। जब ब्राह्मण देश में इस सम्मान का यथार्थ अधिकारी होगा, तब इस देश को कोई अपमानित नहीं कर सकेगा। हम लोग क्या स्वयं राजा के सामने सिर झुकाते हैं? अत्याचारी का बंधन गले में पहनते हैं? अपने डर के सामने ही हमारा सिर झुकता है, अपने लालच के जाल में ही हम बँधे हैं, अपनी मूढ़ता के ही हम दासानुदास है। ब्राह्मण तपस्या करें, उस डर से, लालच से,मूढ़ता से हमें मुक्त करे- हम उनसे युध्द नहीं चाहते, व्यापार नहीं चाहते, और कुछ भी नहीं चाहते- हमारे समाज में वे केवल मुक्ति-साधना को जीवित किए रहें!"

अब तक परेशबाबू चुपचाप सुन रहे थे। अब धीरे-धीरे बोले, "भारतवर्ष को मैं पूर्णत: जानता हूँ, यह तो नहीं कह सकता; और भारतवर्ष ने क्या चाहा था, या जो चाहा था वह कभी पाया भी नहीं, यह मैं निश्चयपूर्वक नहीं जानता। लेकिन जो समय बीत गया है उसकी ओर क्या कभी लौटा जा सकता है? आज जो कुछ सम्भव है वही हमारी साधना का विषय है- अतीत को पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाकर समय नष्ट करने से कोई काम नहीं होगा।"

विनय ने कहा, "जैसा आप कहते हैं मैं भी वैसा ही सोचता हूँ, और मैंने कई बार कहा भी है। गोरा का कहना है, हमने अतीत को अतीत कहकर निरस्त कर दिया है, क्या इसी से वह अतीत हो गया है? वर्तमान की चीख-पुकार की ओट हमारी दृष्टि से वह ओझल हो गया है, इतने से ही वह अतीत नहीं हो जाता- वह भारतवर्ष की मज्जा में बसा हुआ है। कभी भी कोई भी सत्य अतीत नहीं हो सकता, इसीलिए भारतवर्ष के इस सत्य ने हम पर चोट करना आरंभ किया है। हममें से एक मनुष्य भी एक दिन इसे सत्य मानकर पहचान और ग्रहण कर सकेगा तो उसी से हमारे शक्ति स्रोत का रास्ता खुल जाएगा, अतीत तब वर्तमान की सामग्री हो उठेगा! आप क्या समझते हैं कि भारतवर्ष में कहीं भी ऐसे सार्थक-जन्मा व्यक्ति का आविर्भाव नहीं हुआ?"

सुचरिता ने कहा, "जिस ढंग से आप ये बातें कहते हैं, साधारण लोग उसी ढंग से नहीं कहते। इसीलिए आपकी राय को सारे देश की राय मान लेने में संकोच होता है।"

विनय बोला "देखिए, सूर्योदय की वैज्ञानिक लोग एक तरीके से व्याख्या करते हैं, और साधारण लोग एक दूसरे तरीके से। इससे सूर्य के उदय का कुछ घटता-बढ़ता नहीं है। फिर भी सत्य को ठीक तरह जानने में हम लोगों का लाभ ही है। हम लोग देश के जिन सब सत्यों को खंडित करके या बिगाड़कर देखते हैं, गोरा उन सबको एक करके, संयुक्त करके देख सकते हैं- इसकी उनमें आश्चर्यजनक क्षमता है- लेकिन क्या इसी से गोरा के ऐसे देखने को दृष्टि का भ्रम मन लेना होगा और जो लोग तोड़-मरोड़कर देखते हैं, उनके देखने को सत्य?"

सुचरिता चुप हो गई। विनय ने कहा, "साधारणतया हमारे देश में जो सब लोग अपने को परम हिंदू मानकर गर्व करते हैं, मेरे मित्र गोरा को आप उनके गुट का न समझिएगा। अगर उनके पिता कृष्णदयाल बाबू को आप देखतीं तो बाप-बेटे का अंतर सहज ही समझ सकतीं। कृष्णदयाल बाबू हमेशा अपने को सुपवित्र किए रखने के लिए कपड़े उतारने, गंगाजल छिड़कने, पोथी-पत्र बाँचने को लेकर ही दिन-रात व्यस्त रहते हैं। रसोई के मामले में वह बहुत शुध्द ब्राह्मण पर भी विश्वास नहीं

करते कि उसके ब्राह्मणत्व में कहीं कोई त्रुटि न रह गई हो; गोरा को भी अपने कमरे की सीमा में घुसने नहीं देते। कभी अगर किसी काम के लिए उन्हें पत्नी के कमरे में जाना पड़े तो फिर लौटकर अपने को पवित्र कर लेते हैं। दिन-रात पृथ्वी पर बिल्कुल अलग रहते हैं कि कहीं जाने-अनजाने किसी नियम-भंग की धूल का एक कण भी उन्हें न छू जाय! जैसे कोई बहुत ही 'छैला बाबू' अपने को धूल से बचाते हुए अपने रंग-रूप की, बालों की सँवार की, कपड़ों की चुन्नट की रक्षा के लिए सचेत रहता है वैसे ही! गोरा बिल्कुल ऐसे नहीं है। हिंदूपन के नियमों में वे अश्रध्दा नहीं करते, लेकिन ऐसे झाड़-पोंछकर भी नहीं चल सकते। हिंदू-धर्म को वह भीतर से और बहुत ऊँची दृष्टि से देखते हैं, ऐसा वह कभी नहीं सोचते कि हिंदू-धर्म के प्राण इतने नाजुक हैं कि जरा-सी छुअन से ही मुरझा जाएँगे या ठेस लगते ही ध्वस्त हो जाएँगे!"

सुचरिता, 'लेकिन लगता तो यही है कि छुआ-छूत के मामले में वह बड़े सतर्क होकर चलते हैं।"

विनय, "उनकी यह सतर्कता ही एक अद्‌भुत वस्तु है। अगर उनसे पूछा जाय तो वह तुरंत कहेंगे, 'हाँ, मैं यह सब मानता हूँ- छू जाने से जाति जाती है, खाने से पाप होता है, ये सब अभ्रांत सत्य हैं।' लेकिन मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि ये सब उनकी ज़बरदस्ती की बातें हैं- ये बातें जितनी ही असंगत होंगी मानो वह उतनी ही ज़ोर से सुना-सुनाकर सबको कहते हैं। वर्तमान हिंदूपन की मामूली-सी बात को भी न मानने पर अन्य मूर्ख लोगों द्‌वारा कही हिंदुत्व की बड़ी बातों का भी असम्मान न हो, और हिंदुत्व पर जिन्हें श्रध्दा नहीं है कहीं वे उसे अपनी जीत समझें, इस खयाल से बिना विचारे गोरा सभी कुछ मानकर चलना चाहते हैं। मेरे सामने भी इस बारे में कोई शिथिलता प्रकट नहीं करना चाहते।"

परेशबाबू बोले, "ऐसे तो ब्रह्म लोगों में भी बहुत हैं। वे हिंदुत्व की सभी बातों को बिना विचारे दूर कर देना चाहते हैं, जिससे कोई बाहर का व्यक्ति भूल से भी यह न समझे कि वे हिंदू-धर्म की कुप्रथाओं को स्वीकार करते रहे हैं। ऐसे लोग सहज भाव से दुनिया में चल ही नहीं सकते; या तो दिखावा करते हैं या होड़ करते हैं; समझते हैं कि सत्य दुर्बल है और उसे चतुराई या ज़बरदस्ती से बचाना कर्तव्य का ही अंग है। जो लोग ऐसा मानते हैं कि 'सत्य हम पर निर्भर करता है, सत्य पर हम निर्भर नहीं हैं', उन्हीं को तो कठमुल्ला कहते हैं। सत्य की शक्ति पर जिन्हें विश्वास है, वे अपने बल को संयत रखते हैं। दो-चार दिन बाहर के लोग गलत समझ भी लें, यह कोई बड़ा नुकसान नहीं है। लेकिन किसी तुच्छ संकोच के कारण सच्चाई को स्वीकर न कर

सकना बहुत बड़ी क्षति है मैं तो सर्वदा ईश्वर से यही माँगता हूँ कि चाहे ब्रह्म-सभा में हो चाहे हिंदू चंडी-मंडप में, मैं सत्य को सर्वत्र सिर झुकाकर सहज भाव से और बिना विद्रोह के नमन कर सकूँ- बाहर की कोई बाधा मुझे रोक न सके।"

परेशबाबू ने इतना कहकर क्षण-भर स्तब्ध होकर मानो अपने मन का भीतर-ही-भीतर समाधन किया। परेशबाबू ने मृदु स्वर में जो यह बात कहीं उसने इतनी देर की सारी बातचीत में मानो एक गंभीर स्वर ला दिया- वह स्वर परेशबाबू की इस बात का स्वर नहीं था, बल्कि उनके अपने जीवन की एक प्रशांत गंभीरता का स्वर था। सुचरिता और ललिता के चेहरे पर एक आनंदमय भक्ति की दीप्ति फैल गई। विनय चुप रह गया। मन-ही-मन वह जानता था कि गोरा में एक प्रचंड हठधर्मिता है- सत्य के वाहकों के मन, वचन और कर्म में जो एक सहज, सरल शांति रहनी चाहिए कि वह गोरा में नहीं है। परेशबाबू की बात ने मानो उसके मन पर और भी स्पष्ट आघात किया। अवश्य ही इतने दिन विनय गोरा के पक्ष में मन-ही-मन यह दलील देता रहा है कि जब समाज की व्यवस्था डगमग है, जब बाहर के देश-काल के साथ लड़ाई हो रही है, तब सत्य के सिपाही स्वाभाविकता की रक्षा नहीं कर सकते- तब सामयिक ज़रूरतों के दबाव से सच्चाई में भी मिलावट आ जाती है। परेशबाबू की बात से आज क्षण-भर को विनय के मन में प्रश्न उठा- 'तात्कालिक प्रयोजन साधने के लोभवश सच्चाई को बिगाड़ना साधारण लोगों के लिए तो स्वाभाविक है, पर उसके गोरा भी क्या ऐसे ही साधारण लोगों के गुट के हैं?"

जब सुचरिता रात को बिस्तर पर आ लेटी तब ललिता आकर उसकी खाट के किनारे पर बैठ गई। सुचरिता ने जान लिया कि ललिता के मन में कोई बात चक्कर काट रही है। उस बात का संबंध विनय से है, यह भी उसने समझ लिया।

सुचरिता ने इसीलिए स्वयं बात चलाई, "लेकिन विनय बाबू मुझे बहुत अच्छे लगते हैं।"

सुचरिता ने बात का इंगित समझकर भी नहीं समझा हो ऐसा एक सरल भाव धारण करते हुए उसने कहा, "सच ही, उनके मुँह से गोरा बाबू की बात सुनकर बड़ा आनंद होता है। मानो उन्हें मैं स्पष्ट देख रही हूँ।"

ललिता ने कहा, "मुझे तो बिल्कुल अच्छा नहीं लगता- मुझे तो गुस्सा आता है।"

अचंभे से सुचरिता ने कहा, "क्यों?"

ललिता बोली, "गोरा, गोरा, गोरा दिन-रात केवल गोरा! मान लिया कि उनके दोस्त गोरा बहुत बड़े आदमी हैं, अच्छी बात है- लेकिन वह खुद भी तो आदमी हैं!"

हँसकर सुचरिता ने कहा, "सो तो है! लेकिन इसमें हर्ज क्या है?"

ललिता, "उनके दोस्त उन पर ऐसे छाए हैं कि वह अपनी बात कह ही नहीं सकते। मानो एक मड़ी ने एक टिड्डे को घेर लिया हो.... वैसी हालत में मकड़ी पर भी मुझे गुस्सा आता है, और टिड्डे पर श्रध्दा होती हो ऐसा भी नहीं है।"

ललिता की बात के पैनेपन पर सुचरिता कुछ न कहकर हँसने लगी।

ललिता ने कहा, "दीदी, तुम हँस रही हो, लेकिन मैं तुमसे कहे देती हूँ, कोई मुझे वैसे दबाए रखने की कोशिश करता तो एक दिन भी मैं सहन न करती। तुम यही सोचो- लोग चाहे जो समझें, तुमने मुझे आच्छन्न करके नहीं रखा- वैसी प्रकृति ही तुम्हारी नहीं है- इसीलिए तो तुम इतनी अच्छी लगती हो। असल में तुमने यह बाबा से ही सीखा है- वह हर किसी के लिए उसके लायक स्थान छोड़ देते हैं।"

सुचरिता और ललिता इस परिवार में परेशबाबू की परम भक्त हैं। "बाबा' कहते ही उनका हृदय जैस खिल उठता है।

सुचरिता ने कहा, "अब बाबा से किसी की तुलना थोड़े ही हो सकती है? लेकिन जो हो भई, विनय बाबू बात को बड़े अच्छे ढंग से कह सकते हैं।"

ललिता, "वे सब बातें उनके मन की नहीं हैं न, तभी इतने अच्छे ढंग से कह सकते हैं! अपनी बातें कहते तो बड़ी सीधी-सरल बातें होतीं, यह न लगता कि सोच-सोचकर, बना-बनाकर कह रहे हैं। इस सब बढ़िया-बढ़िया बातों के मुकाबले वह मुझे कहीं ज्यादा अच्छा लगता।"

सुचरिता, "तो तू नाराज क्यों होती है! गौरमोहन बाबू की बातें उनकी अपनी बातें हो गई हैं।"

ललिता, "अगर ऐसा है तो यह और भी बुरा है। भगवान ने बुध्दि क्या इसीलिए दी है कि दूसरों की बात की व्याख्या करते रहें, और मुँह इसलिए दिया है कि दूसरों की ही बातें अच्छे ढंग से कहते रहें? मुझे ऐसे अच्छे ढंग की कोई ज़रूरत नहीं है।"

सुचरिता, "लेकिन यह बात तू क्यों नहीं समझती कि विनय बाबू गौरमोहन बाबू को बहुत चाहते हैं- उनके साथ उनके मन का सच्चा जुड़ाव है?"

अधीर होकर ललिता ने कहा, "नहीं, नहीं, नहीं! पूरा जुड़ाव नहीं है गौरमोहन बाबू को आदर्श मानकर चलना उनकी आदत हो गई है- वह प्रेम नहीं है, गुलामी है। फिर भी ज़बरदस्ती मानना चाहते हैं कि उनके साथ उनकी राय बिल्कुल मिलती है। उनकी राय को इसीलिए इतने यत्न से सजा-सजाकर अपने को और दूसरे को भुलाने की कोशिश करते हैं। वह केवल अपने मन के संदेह और विरोध को दबा देना चाहते हैं, ताकि गौरमोहन बाबू को कहीं अमान्य न करना पड़े। उनको अमान्य करने का हौसला उनमें नहीं है। प्रेम हो तो राय अलग होने पर भी बात मानी जा सकती है- बिना अंधे हुए भी अपने को छोड़ दिया जा सकता है- उनका रवैया वैसा नहीं है। गौरमोहन बाबू को वह मानते तो शायद प्रेम के कारण ही हैं, पर किसी तरह इस बात को स्वीकार नहीं कर पाते। उनकी बात सुनने से साफ पता चल जाता है। अच्छा दीदी, बताओ, क्या तुम्हें नहीं पता लगता?"

ललिता की भाँति सुचरिता ने यह सब बात इस ढंग से सोची ही नहीं थी। उसका कौतूहल गोरा को पूरी तरह जानने के लिए ही इतना व्यग्र था कि अकेले विनय को स्वतंत्र रूप से समझने की ओर उसका ध्यान ही नहीं था। ललिता के प्रश्न का सुचरिता ने स्पष्ट उत्तर न देकर कहा, "अच्छा चल; तेरी बात ही मन ली- तो बता, फिर क्या किया जाय?"

ललिता, "मेरा मन तो करता है, उनके दोस्त के बंधन से उन्हें छुड़ाकर स्वाधीन कर दिया जाय।"

सुचरिता, "तो प्रयास करके देख ले न!"

ललिता- "मेरे प्रयास से नहीं होगा- ज़रा तुम ध्यान दोगी तो हो सकेगा।"

यद्यपि सुचरिता ने मन-ही-मन समझ लिया था कि विनय उसके प्रति अनुरक्त है, तब भी ललिता की बात को उसने हँसकर टाल देना चाहा।

ललिता ने कहा, "गौरमोहन बाबू का आदेश तोड़कर भी तुम्हारे पास वह जो ऐसे पकड़ाई देने आते हैं, इसीलिए वह मुझे अच्छे लगते हैं। उनकी जगह और कोई होता तो ब्रह्म लड़कियों को गालियाँ देकर नाटक लिखता। उनका मन अब भी खुला है, इसका यही सबूत है कि वह तुम्हें चाहते हैं और बाबा का आदर करत हैं। विनय बाबू

को अब उनके अपने रूप में खड़ा करना ही होगा, दीदी! केवल गौरमोहन बाबू का वह जो प्रचार करते रहते हैं, वह मुझे असहनीय लगता है।"

सतीश इसी समय 'दीदी' पुकारता हुआ आ पहुँचा। आज विनय उसे बड़े मैदान में सर्कस दिखाने ले गया था। यद्यपि रात बहुत बीत गई थी फिर भी अपने पहली बार सर्कस देखने का उत्साह उससे सँभल नहीं रहा था। सर्कस का पूरा वर्णन सुना देने के बाद वह बोला, "विनय बाबू को पकड़कर आज मैं अपने बिस्तर पर ला रहा था- वह घर के अंदर आए भी थे, फिर चले गए। बोले कि कल आएँगे। दीदी, उनसे मैंने कहा है एक दिन वे आप लोगों को भी सर्कस दिखा लावें।"

ललिता ने पूछा, "उन्होंने इस पर क्या कहा?"

सतीश ने कहा, "वह बोले, लड़कियाँ बाघ देखकर डर जाएँगी। लेकिन मुझे बिल्कुल डर नहीं लगा।"

कहते-कहते पौरुष के अभिमान से छाती फुलाकर सतीश बैठ गया।

ललिता ने कहा, "ऐसी बात है! तुम्हारे दोस्त विनय बाबू का साहस कितना प्रबल है, खूब समझ सकती हूँ। नहीं दीदी, सर्कस दिखाने के लिए उन्हें हमें अपने साथ ले जाना ही होगा।"

सतीश बोला, "कल तो सर्कस दिन में होगा।"

ललिता ने कहा, "वह तो और अच्छ है- दिन में ही जाएँगे।"

दूसरे दिन विनय के आते ही ललिता बोल उठी, "लीजिए, ठीक वक्त पर आए हैं, विनय बाबू! चलिए!"

विनय ने पूछा, "कहाँ चलना होगा?

ललिता, "सर्कस देखने।"

सर्कस देखने! वह भी दिन दहाड़े शामियाना-भर लोगों के सामने लड़कियों को लेकर सर्कस देखने जाना! हक्का-बक्का हो गया विनय।

ललिता बोली, "ऐसा जान पड़ता है, गौरमोहन बाबू नाराज़ होंगे?"

ललिता के इस प्रश्न से विनय कुछ चकित हुआ।

ललिता ने फिर कहा, "सर्कस दिखाने लड़कियों को ले जाने के बारे में भी क्या गौरमोहन बाबू की कोई राय है?"

विनय ने कहा, "जरूर है।"

ललिता, "उसकी व्याख्या आप किस ढंग से करते हैं, ज़रा बताइए तो? मैं दीदी को बुला लाऊँ, वह भी सुन लेंगी।"

झेंपकर विनय हँसा। ललिता ने कहा, "हँसते क्यों हैं, विनय बाबू? आपने कल सतीश से कहा था कि लड़कियाँ बाघ से डरती हैं। जैसे आप किसी से नहीं डरते!'

विनय इस पर लड़कियों को सर्कस दिखाने ले गया था। इतना ही नहीं, गोरा के साथ उसका संबंध ललिता को, और शायद परिवार की सभी लड़कियों को कैसा जान पड़ता है- मन-ही-मन इस बात को लेकर भी वह काफी उधेड़-बुन करता रहा था।

इस प्रकरण के बाद विनय से जिस दिन ललिता की भेंट हुई उसने बड़े भोलेपन से पूछा, "उस दिन की सर्कस जाने वाली बात क्या आपने गौरमोहन बाबू को बता दी?"

विनय को यह प्रश्न बहुत अखरा, क्योंकि कानों तक लाल होते हुए उसे कहना पड़ा, "नहीं, अभी तक मौका नहीं मिला।'

हँसते हुए लावण्य ने कमरे में आकर कहा, "विनय बाबू, आइए न।"

ललिता बोली, "कहाँ? सर्कस देखने?"

लावण्य ने कहा, "वाह, आज कैसा सर्कस? मैं इसलिए बुला रही हूँ कि पेंसिल से मेरे रूमाल के चारों ओर एक बेल ऑंक दें- मैं काढूँगी। विनय बाबू बड़ा सुंदर ऑंकते हैं।"

कहती हुई लावण्य विनय को खींचकर ले गई।

गोरा - Gora in Hindi

1. गोरा अध्याय
2. गोरा अध्याय
3. गोरा अध्याय
4. गोरा अध्याय
5. गोरा अध्याय
6. गोरा अध्याय
7. गोरा अध्याय
8. गोरा अध्याय
9. गोरा अध्याय
10. गोरा अध्याय
11. गोरा अध्याय
12. गोरा अध्याय
13. गोरा अध्याय
14. गोरा अध्याय
15. गोरा अध्याय
16. गोरा अध्याय
17. गोरा अध्याय
18. गोरा अध्याय
19. गोरा अध्याय
20. गोरा अध्याय